

खंड-IV

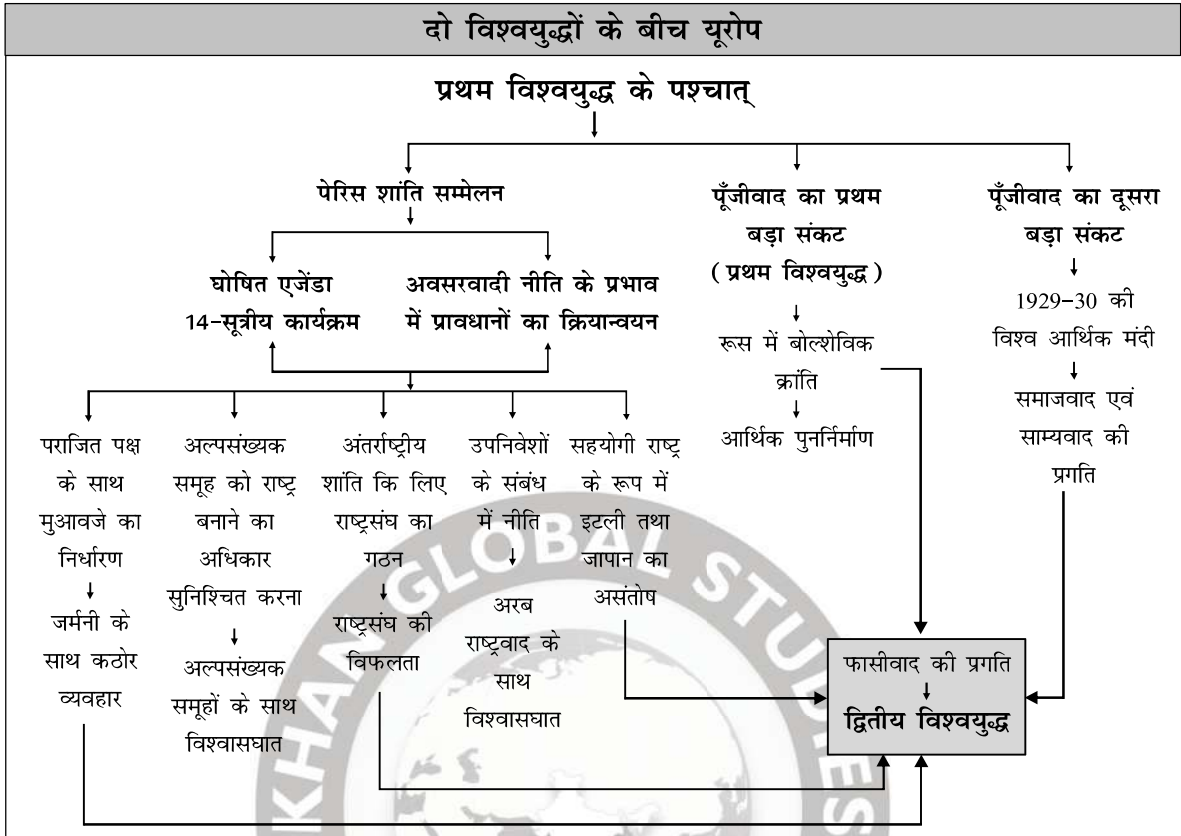
यह खंड दो विश्वयुद्धों के बीच विश्व राजनीति की दिशा को बताता है। इस खंड में निम्नलिखित टॉपिक्स का अध्ययन किया जाएगा-

- उपखंड-I : पेरिस शांति सम्मेलन
- उपखंड-II : पूंजीवाद का प्रथम बड़ा संकट (प्रथम विश्वयुद्ध)
- उपखंड-III : पूंजीवाद का दूसरा बड़ा संकट- विश्व आर्थिक मंदी
- उपखंड-IV : विश्व आर्थिक मंदी के विरुद्ध विध्वंसात्मक प्रतिक्रिया- फासीवाद एवं नाज़ीवाद

इस खंड के अध्ययन के क्रम में आप निम्नलिखित बातों को जानने का प्रयास कीजिये-

- पेरिस शांति सम्मेलन को 20 वर्षों का युद्ध विराम क्यों कहा गया है? अथवा किसी विद्वान ने विश्वयुद्ध को अलग-अलग न मानकर 31 वर्षों का एक बड़ा युद्ध क्यों करार दिया है? क्या द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामों में निहित था?
- रूस की बोलशेविक क्रांति को पूंजीवाद का संकट क्यों माना जाता है?
- मार्क्स से लेकर लेनिन तक आप मार्क्सवादी विचारधारा में क्या परिवर्तन पाते हैं? आगे स्टॉलिन ने रूसी साम्यवादी व्यवस्था के स्वरूप में क्या परिवर्तन ला दिया?
- विश्व आर्थिक मंदी ने पूंजीवाद के व्यवहार में क्या परिवर्तन ला दिया?
- पूंजीवादी और समाजवादी आर्थिक मॉडल में अंतर का बिंदु क्या है?
- फासीवाद को पूंजीवाद की विफलता का परिणाम क्यों माना जाता है? फासीवाद और मार्क्सवाद के बीच समानता एवं असमानता के बिंदु क्या हैं?

-मणिकान्त सिंह



■ पेरिस शांति सम्मेलन

- 11 नवंबर, 1918 को प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् 18 जनवरी, 1919 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में शांति सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में चार महत्वपूर्ण व्यक्ति थे (Big Four)– अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज, फ्राँसीसी प्रधानमंत्री क्लिमेंशो और इटालियन प्रधानमंत्री औरलैण्डो। कालांतर में इटली का राष्ट्रपति औरलैण्डो इससे बाहर हो गया। अतः उपर्युक्त तीन नेताओं का ही वर्चस्व बना रहा। इस शांति सम्मेलन में वास्तविक शक्ति 'सर्वोच्च शांति परिषद्' में निहित थी। यह सम्मेलन पूर्व काल की यूरोपीय कांग्रेस से इस रूप में पृथक् था कि यह एक यूरोपीय सम्मेलन नहीं, बल्कि विश्व सम्मेलन था क्योंकि इसमें यूरोप के बाहर के राष्ट्रों की भी भागीदारी थी। फिर जहाँ वियना कांग्रेस का उद्देश्य राष्ट्रवाद की भावना को कुचलना था, वहीं पेरिस शांति सम्मेलन ने यूरोपीय देशों की भौगोलिक सीमा के निर्धारण में राष्ट्रवाद एवं आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर बल दिया। इस शांति सम्मेलन में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ टकरा रही थीं। एक तरफ विल्सन का आदर्श था, तो दूसरी तरफ लॉयड जॉर्ज एवं क्लिमेंशो का यथार्थ था। एक तरफ विल्सन के 14 सूत्रीय कार्यक्रम थे,

तो दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों की गुप्त संधियाँ थीं। यह दूसरी बात है कि अपने नाम के विपरीत पेरिस शांति सम्मेलन अशांति का जनक सिद्ध हुआ और 20 वर्षों के अन्दर इसके सारे प्रावधान टूटकर बिखर गए।

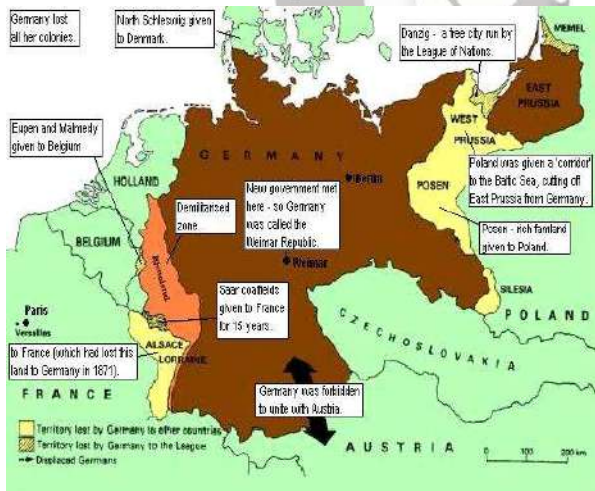
■ घोषित एजेन्डा:

- पेरिस शांति सम्मेलन का घोषित एजेन्डा था– विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम। इसमें यह आश्वासन दिया गया था कि विजता एवं पराजित पक्ष दोनों के साथ न्याय किया जाएगा अर्थात् सम्पूर्ण न्याय की अवधारणा को लागू किया जाएगा। विल्सन को यह विश्वास था कि अगर इस कार्यक्रम को संपूर्णता में लागू किया जाता है, तो प्रथम विश्वयुद्ध यूरोप का अन्तिम युद्ध सिद्ध होगा।
- अवसरवादी नीति के प्रभाव में प्रावधानों का क्रियान्वयन– संधि के प्रावधानों के क्रियान्वयन में विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम की खुलकर अवहेलना की गयी। वास्तव में, ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज तथा फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लिमेंशो ने यथार्थवादी राजनीति के दबाव में संधि के प्रावधानों की अवहेलना की। वस्तुतः यथार्थवाद अथवा अवसरवाद का प्रतिनिधित्व ब्रिटेन एवं फ्राँस कर रहे थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री होने के नाते जहाँ वह यूरोप में शक्ति-संतुलन बनाए रखने के लिये अत्यधिक चिंतित थे,

वहीं फ्राँस का प्रधानमंत्री यह समझता था कि जब तक जर्मनी का आकार छोटा नहीं किया जाता, तब तक फ्राँस की स्थिति कमजोर बनी रहेगी। इसलिये वह जर्मनी को अत्यधिक दंडित करने का पक्षपाती था। इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन आदर्शवाद का प्रतिनिधत्व कर रहे थे, परंतु उनका भी अपना कुछ गुप्त एजेंडा था। वह था- यूरोप पर संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव को बढ़ाना तथा अमेरिकी उत्पादों के लिये यूरोप में बाजार प्राप्त करना।

■ पेरिस शांति सम्मेलन के प्रमुख कार्यक्रम

1. पराजित पक्ष के साथ मुआवजे का निर्धारण- युद्ध मुआवजे के निर्धारण के क्रम में बहुत कठोर शर्तें रखी गईं तथा पराजित देशों के साथ पृथक्-पृथक् संधि की गयी, यथा, जर्मनी के साथ वर्साय की संधि, ऑस्ट्रिया के साथ सेंट जर्मेन की संधि, हंगरी के साथ त्रियानों की संधि, बुल्गारिया के साथ न्यूली की संधि तथा तुर्की के साथ सेब्रे की संधि। इन सभी संधियों में वर्साय की संधि सर्वाधिक कठोर थी। यह संधि प्रथम विश्व युद्ध के अंत में जर्मनी और मित्र देशों के बीच हुई थी। इस संधि के द्वारा जर्मनी के लगभग 13% भू-भाग एवं 13% संसाधनों को छीन लिया गया।



■ वर्साय की संधि (1919) को एक आरोपित संधि क्यों माना जाता है?

- निम्नलिखित कारणों से इसे एक आरोपित संधि माना जाता है-
1. जर्मनी के साथ इस संधि के मध्य विश्वासघात हुआ। जर्मनी ने विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर समर्पण किया था, परंतु फिर भी उस पर संधि की कठोर शर्तें थोप दी गईं।
 2. जर्मनी से उसका 13% भू-भाग और 13% संसाधन छीन लिया गया। जर्मनी का कुछ भू-भाग काटकर उसके

पड़ोसियों को दे दिया गया, ताकि अगर भविष्य में जर्मनी का उत्थान हो, तो पड़ोसी राष्ट्र उसे रोक सकें। उदाहरण के लिए, सुडेटेनलैंड का क्षेत्र, जहाँ 30 लाख जर्मन जनसंख्या बसती थी, चेकोस्लोवाकिया को दे दिया गया। सबसे बढ़कर, पोलैंड को समुद्र तट तक पहुँचाने के लिए जर्मनी से एक गलियारा निकाला गया। आगे हिटलर ने इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया दिखाई।

3. जर्मनी से मुआवजे के बदले क्षतिपूर्ति की रकम ली गयी, जो बहुत अधिक थी।
4. जर्मन प्रतिनिधियों के साथ सामान्य कूटनीतिक औपचारिकता का भी पालन नहीं किया गया, अपितु उनके साथ अपराधी जैसा व्यवहार किया गया।।
5. जर्मनी की ओर से एक निर्वाचित सरकार के रूप में वाइमर गणतंत्र वार्ता कर रहा था। अगर उसके साथ अच्छा व्यवहार किया गया होता, तो जर्मनी में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती और गणतंत्रवाद की परम्परा मजबूत होती। परन्तु उसे अपमानित किये जाने का लाभ आगे नाजी पार्टी और हिटलर को मिला।
 - एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री जे०एम० केंस ने, जो ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल में शामिल था, यह स्पष्ट कर दिया था कि इस संधि का क्रियान्वयन व्यावहारिक रूप में संभव नहीं था।

प्रश्न: वर्साय की संधि ने द्वितीय विश्व युद्ध का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? (UPSC, 2013 - GS)

उत्तर: विश्व इतिहास में वर्साय की संधि एक ऐसी घटना के रूप में स्थापित है जिसने एक महायुद्ध के समाधान के क्रम में उससे भी भयानक महायुद्ध को जन्म दिया। वर्साय में जर्मनी पर आरोपित संधि की अत्यधिक कठोर शर्तें द्वितीय विश्वयुद्ध का एक महत्वपूर्ण कारण मानी जाती हैं, किंतु वर्साय की संधि एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच एक कालांतराल है, इस पहलू को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

वर्साय की संधि में कई ऐसे पहलू निहित थे, जो जर्मनी को प्रतिशोधात्मक रूख अपनाने का उचित कारण दे रहे थे।। प्रथम, जर्मनी ने विल्सन के 14 सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर समर्पण किया था, किंतु फिर भी जर्मनी के साथ कठोरता बरती गई थी। दूसरे, इस संधि के मध्य एक सामान्य कूटनीतिक औपचारिकता का भी पालन नहीं किया गया तथा जर्मन प्रतिनिधियों को अपमानित किया गया। तीसरे, आत्मनिर्णय के अधिकार की अवहेलना करते हुए, जो 14 सूत्रीय कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू था, एक बड़ी जर्मन जनसंख्या को जर्मनी से काटकर अलग कर दिया गया। सबसे बढ़कर, इस संधि की

आर्थिक शर्तों, जैसा कि एक प्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री जे. एम. केन्स ने भी स्वीकार किया था, इतनी कठोर थीं कि इसका क्रियान्वयन ही संभव नहीं था।

इस प्रकार, वर्साय की संधि में वे सारे कारक मौजूद थे जो जर्मनी में उग्र राष्ट्रवाद को प्रेरित करने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते थे। किंतु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वर्साय की संधि एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच लगभग 20 वर्षों का कालान्तराल था। अतः जाहिर है कि इसमें कुछ और भी ऐसे कारक जुड़ गए थे, जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध को प्रोत्साहित किया। इनमें एक कारक था विश्व आर्थिक मंदी, जिसने जर्मनी में फासीवादी ताकत को मजबूत किया तथा दूसरा, मित्र राष्ट्रों (ब्रिटेन एवं फ्रांस) के बीच इस संधि के क्रियान्वयन पर सहमति नहीं बन पाना।

इस तरह हम देखते हैं कि यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध का आधार निर्मित करने में वर्साय की संधि का भी योगदान रहा था, फिर भी द्वितीय विश्व युद्ध के लिए संपूर्ण उत्तरदायित्व केवल वर्साय की संधि को नहीं दिया जा सकता।

सेंट जर्मेन की संधि-

- 10 दिसंबर, 1919 को ऑस्ट्रिया के साथ यह संधि की गई। इस संधि के द्वारा ऑस्ट्रिया के बड़े साम्राज्य का विघटन हो गया तथा चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, पोलैंड एवं हंगरी जैसे देश अस्तित्व में आए। ऑस्ट्रिया की सेना 30 हजार तक सीमित कर दी गई एवं सबसे बढ़कर ऑस्ट्रिया को चेतावनी दी गई कि अगर वह आगे इस प्रकार का कदम उठाता है तो एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उसका अस्तित्व मिटा दिया जाएगा।

2. अल्पसंख्यक समूह को राष्ट्र बनाने का अधिकार सुनिश्चित करना-

- बाल्कन क्षेत्र में अल्पसंख्यक समूहों के द्वारा की जाने वाली राष्ट्रवादी माँग के कारण सम्पूर्ण 19वीं सदी से लेकर 20वीं सदी के आरम्भ तक अशान्ति छाया रही थी। अतः विल्सन का मानना था कि अगर इस अल्पसंख्यक समूह की राष्ट्रवादी आकांक्षा पूरी कर दी जाती है, तो यूरोप में स्थायी शांति बहाल हो जाएगी। फिर इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर हैब्सबर्ग साम्राज्य को विघटित कर दिया गया और इसके विघटन पर ऑस्ट्रिया, हंगरी, यूगोस्लाविया एवं चेकोस्लोवाकिया जैसे पृथक् राष्ट्र का निर्माण किया गया।



- परन्तु यहाँ भी अवसरवादी राजनीति को ध्यान में रखते हुए विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम की अवेहलना हुई तथा जर्मनी के पड़ोस में शक्तिशाली राष्ट्र की स्थापना के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एक अल्पसंख्यक समूह के साथ दूसरे अल्पसंख्यक समूह को मिला दिया। इतना ही नहीं, पड़ोसी राष्ट्र को मजबूत बनाने के लिए जर्मन जनसंख्या को भी काटकर उसके साथ मिला दिया गया। उदाहरण के लिए, जर्मन क्षेत्र सुडेटेनलैंड को काटकर चेकोस्लोवाकिया के साथ मिला दिया गया। इन कारणों से इन राष्ट्रों में अस्थिरता बनी रह गई। सबसे बढ़कर, 1993 में यूगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया का विघटन हो गया। इतना तक कि एरिक हॉब्सबॉम ने इन राष्ट्रों के विघटन के कारण की व्याख्या करते हुए कहा कि ये राष्ट्र पेरिस शांति सम्मेलन के एक अधिका चिकेन थे जो दोबारा पकने आये हैं।





3. अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए राष्ट्रसंघ का गठन-

- 1648 की वेस्टफेलिया संधि के पश्चात् शक्ति संतुलन की अवधारणा को युद्ध के विकल्प के रूप में देखा जाता रहा था, परन्तु शक्ति संतुलन की अवधारणा युद्ध का वास्तविक विकल्प नहीं दे सकी। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् यूरोपीय नेताओं एवं बुद्धिजीवियों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के परिप्रेक्ष्य में सोचना आरम्भ कर दिया तथा पेरिस शान्ति सम्मेलन में अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन की पहल पर राष्ट्रसंघ के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई। यह 1919 में 41 राष्ट्रों का संगठन था जो 1941 में बढ़कर 60 हो गया। इसके महत्वपूर्ण निकाय के रूप में असेम्बली एवं काउन्सिल थी। इसने शान्ति की दिशा में निम्नलिखित कार्य किए-

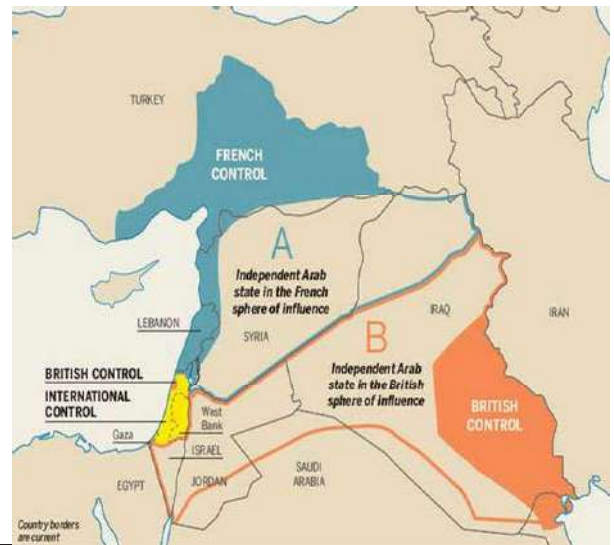
- i. मैण्डेट प्रणाली के तहत इसने कुछ क्षेत्र प्रमुख देशों के संरक्षण में रखे थे। इस संगठन की निगरानी के कारण वे देश उस क्षेत्र को हड़प नहीं सके।
- ii. कम-से-कम छोटे राष्ट्रों के बीच होने वाले विवादों के निपटारे में इसे सफलता भी मिली थी।
- iii. विशेषकर, इसके मानवीय और कल्याणकारी कार्य सराहनीय रहे। उदाहरण के लिए, बीमारियों की रोकथाम, शरणार्थियों का पुनर्वास आदि, परन्तु निम्नलिखित कारणों से राष्ट्र संघ आगे चलकर विफल हो गया-

- a. चूँकि इसमें सभी राष्ट्रों की समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था और बड़ी शक्तियों को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था, अतः बड़ी शक्तियों ने इसके संचालन में रुचि नहीं ली।
- b. इस संस्था के स्वरूप के मुद्दे पर ब्रिटिश, अमेरिकी एवं फ्रांसीसी दृष्टिकोण में मतभेद था। एक तरफ ब्रिटेन और अमेरिका इसे विचार-विमर्श करने तक सीमित रखना चाहते थे, वहीं दूसरी तरफ फ्राँस इसे एक शक्तिशाली संस्था में रूपान्तरित करना चाहता था।
- c. इसमें असेम्बली एवं काउन्सिल दोनों को समान शक्ति दी गयी थी।

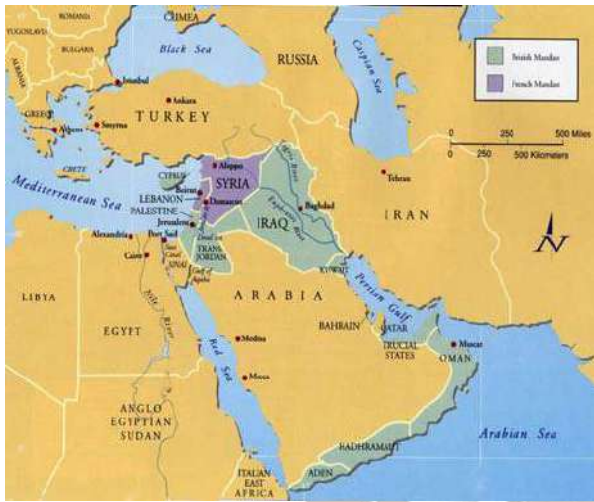
- d. इसका संस्थापक सदस्य संयुक्त राज्य अमेरिका ही इसका सदस्य नहीं बन सका।
- e. आरम्भ में पराजित देशों को इसकी सदस्यता से बाहर रखा गया था, अतः इन देशों में संस्था के प्रति सम्मान की भावना नहीं आयी।
- f. इसमें किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय पर सर्वसम्मति आवश्यक थी, अतः व्यवहार में इसका क्रियान्वयन बहुत ही मुश्किल हो गया। आगे यह संस्था जापान, इटली एवं जर्मनी की आक्रामक नीति पर अंकुश लगाने में विफल रही।

4. उपनिवेशों के संबंध में नीति-

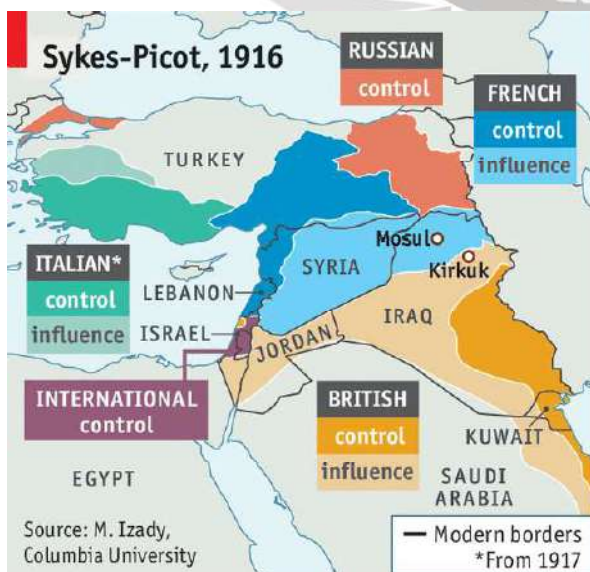
- सामान्यतः उपनिवेशों को यह स्पष्ट कर दिया गया था कि विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम में वर्णित आत्मनिर्णय का अधिकार उपनिवेशों पर लागू नहीं होता। बावजूद इसके प्रथम विश्व युद्ध की घोषणा एवं विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम के प्रावधान से भारत, चीन एवं मिस्र जैसे उपनिवेश अत्यधिक उत्साहित हो गए थे। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उन्होंने ठगा हुआ सा महसूस किया। अतः भारत में रॉलेट सत्याग्रह आन्दोलन, चीन में मई चतुर्थ आंदोलन और मिस्र में स्वतंत्रता आंदोलन आरम्भ हो गया।
- दूसरी तरफ, पराजित पक्ष के उपनिवेशों के सन्दर्भ में कुछ दूसरे प्रकार का निर्णय लिया गया। उन उपनिवेशों को सेंट्रल पावर से मुक्त किया जाना था, परन्तु उन्हें आजादी नहीं दी गयी, बल्कि उन्हें गुलाम बनाए रखने के लिए एक नए प्रकार की पद्धति अर्थात् मैण्डेट प्रणाली (संरक्षण प्रणाली) विकसित की गयी। इसके अंतर्गत राष्ट्र संघ की निगरानी में इन उपनिवेशों को विकसित राष्ट्रों के संरक्षण में रखा जाना था। कुल मिलाकर यह नव-उपनिवेशवाद का ही एक रूप बन गया। पराजित राष्ट्रों के उपनिवेशों को विकास के स्तर के आधार पर A, B और C समूहों में बाँटकर उन्हें मैण्डेट पद्धति के अंतर्गत रख दिया गया।



- परन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सबसे बड़े विश्वासघात का शिकार हुआ अरब क्षेत्र, जो ऑटोमन साम्राज्य का उपनिवेश रहा था। पश्चिमी शक्तियों के द्वारा अरब क्षेत्र के सम्बन्ध में जो परस्पर विरोधी नीतियाँ अपनायी गयीं, उन्हीं नीतियों का नतीजा है- अरब क्षेत्र में अस्थिरता तथा अशान्ति।
- अरब क्षेत्र में तीन परस्पर विरोधी सन्धियाँ हुई-
 - हुसैन-मैकमहोन समझौता (1915 ई.)- इसके तहत मक्का के ग्रांड शरीफ हुसैन एवं उसके पुत्र फैसल को ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध ब्रिटिश सेना की सहायता से एक विद्रोह खड़ा करना था और उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण अरब क्षेत्र को मिलाकर हुसैन के अधीन एक अरब राष्ट्र का निर्माण होगा।



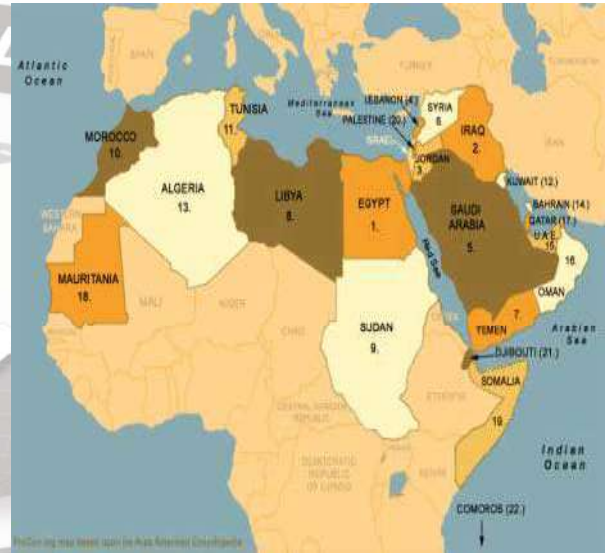
- साईक्स-पिकॉट समझौता (1915 ई.)- दूसरी तरफ, ब्रिटेन और फ्रांस के बीच यह गुप्त समझौता हुआ कि युद्ध के पश्चात् इस भूभाग को आपस में बाँट लेंगे।



- बालफोर घोषणा (1917 ई.)- इसके तहत ब्रिटिश द्वारा यहूदी लोगों को फिलिस्तीनी क्षेत्र में एक राष्ट्र बनाने

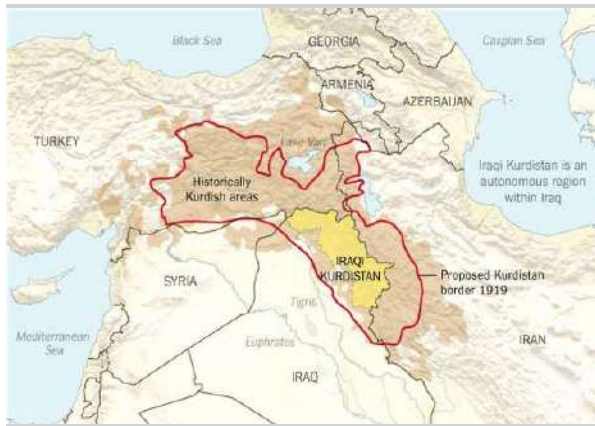
का आश्वासन दिया गया।

- अरब राष्ट्र के साथ विश्वासघात- युद्ध के पश्चात् अरब क्षेत्र को अनेक राष्ट्रों में विभाजित कर दिया गया तथा ब्रिटेन एवं फ्रांस का उन पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित हो गया। उदाहरण के लिए, फिलिस्तीनी क्षेत्र ब्रिटिश संरक्षण में, वहीं इराक फैसल के अधीन ब्रिटेन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में, हेजाज का शासक हुसैन बना, परन्तु वह ब्रिटिश के इशारे पर कार्य करता रहा। ट्रांस जॉर्डन का शासक हुसैन का छोटा पुत्र अब्दुल्ला बना, परन्तु वह भी व्यवहार में स्वतंत्र शासक नहीं था। दूसरी तरफ, सीरिया एवं लेबनान को फ्रांस के मैन्डेट के अंतर्गत रख दिया गया। उपर्युक्त व्यवस्था ने अरब क्षेत्र में गहरे असंतोष को जन्म दिया क्योंकि यह अरब राष्ट्रवाद के साथ एक बड़ा धोखा था।



- कुर्दों के साथ विश्वासघात- जैसा कि हम जानते हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के मध्य मित्र राष्ट्रों ने अरब राष्ट्रवाद को एक पहचान दी थी तथा अरबों को यह आश्वासन दिया था कि उन्हें एक पृथक राष्ट्र दिया जाएगा। प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने कुर्दों के अधिकार को कैसे अस्वीकार कर दिया, जबकि अरब क्षेत्र में कुर्दों की भी अच्छी जनसंख्या थी। अतः कुर्दों ने भी कुर्दिस्तान की माँग उठाई। उस समय कुर्दों की जनसंख्या ऑटोमन साम्राज्य और ईरान के अधीन थी। फिर जब पेरिस शांति सम्मेलन में अरब क्षेत्र को ऑटोमन साम्राज्य से अलग कर दिया गया और अरब क्षेत्र को कई खंडों में बाँट दिया तो फिर कुछ कुर्द इराक में और कुछ कुर्द सीरिया में चले गए। वर्तमान में कुर्द चार देशों में फैले हुए हैं- तुर्की, ईरान, इराक और सीरिया। जब इराक को अमेरिका ने जीता, तो उसने सुन्नी मुसलमानों के समानांतर कुर्दों के अधिकार को स्वीकार किया और इराक से निकलते हुए उसने कुर्द क्षेत्र को स्वायत्तता प्रदान कर दी। इससे अन्य क्षेत्रों के कुर्दों का भी मनोबल बढ़ गया।

- वर्तमान में तुर्की की सरकार के लिए कुर्द एक बड़ी समस्या है। वर्तमान में इस्लामिक कट्टरपंथी आईएसआईएस (ISIS) ने न केवल शियाओं को, बल्कि कुर्दों को भी अपना निशाना बनाया है। इसलिए सीरिया में और साथ ही इराक में आईएसआईएस के विरुद्ध लोहा लेने में कुर्दों ने अहम भूमिका निभाई है।

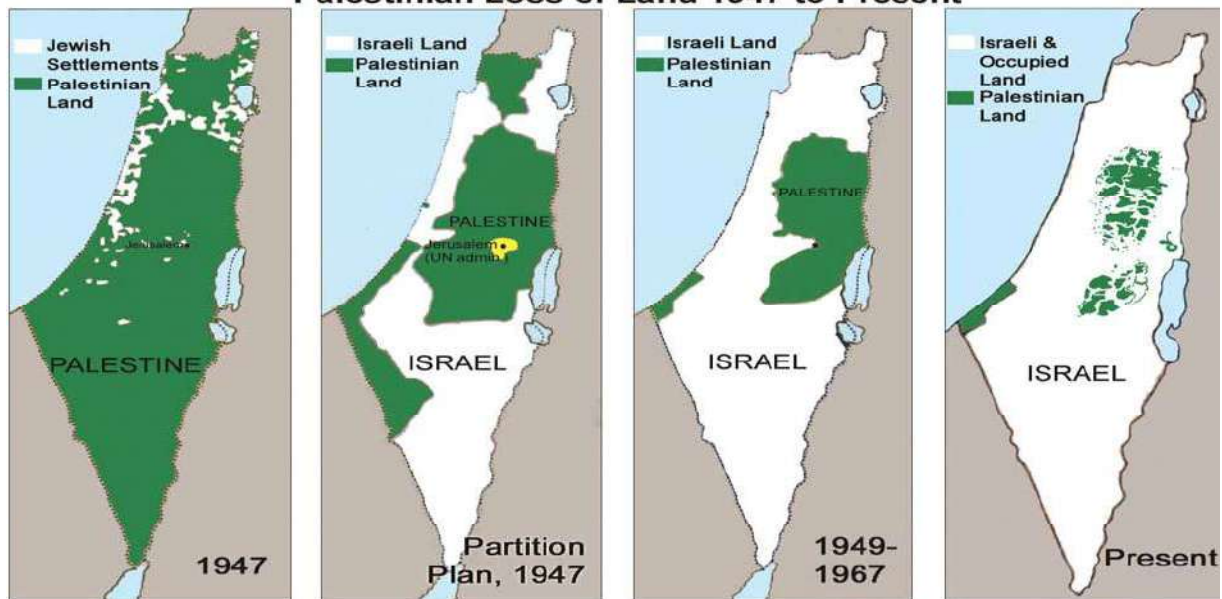


- **फिलिस्तीनी-इजरायल विवाद**- यहूदी विश्व का एक प्रगतिशील एवं आर्थिक रूप में सफल कौम रही है, परंतु प्राचीन काल से ही यह मातृभूमि की तलाश में इधर-उधर भटकती रही थी। रोमन साम्राज्य के अंतर्गत यहूदियों को काफी उत्पीड़ित किया गया। फिर यहूदी लोग फिलिस्तीनी क्षेत्र को छोड़कर विभिन्न क्षेत्रों में भागने लगे, परंतु इनकी विडंबना यह थी कि ये जहाँ भी जाते, वहाँ उन्हें उत्पीड़न का सामना करना पड़ता। इसका कारण था इनका व्यावसायिक हुनर। जिन क्षेत्रों में इनका जाना होता, वे वहाँ के व्यापारियों को लगभग व्यापार से बाहर कर देते।



- 20वीं सदी के आरंभ तक यहूदियों का एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन कायम हो गया था तथा यह संगठन फिलिस्तीनी क्षेत्र में एक राष्ट्र बनाने का प्रयास करने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के मध्य इसे एक अवसर मिला, जब मित्र राष्ट्र (ब्रिटेन तथा फ्रांस) ने आर्थिक सहायता के बदले यहूदियों को एक पृथक् यहूदी राष्ट्र बनाने का आश्वासन बालफोर घोषणा के तहत दिया। आगे फिलिस्तीनी क्षेत्र जब पेरिस शांति सम्मेलन के निर्णय के आधार पर ब्रिटेन के संरक्षण में रखा गया, तब ब्रिटेन की पहल पर बड़ी संख्या में यहूदी इस क्षेत्र में बस गए। शीघ्र ही इसने फिलिस्तीनी-यहूदी संघर्ष का रूप ले लिया। अन्य अरब राष्ट्र भी इस घटना से क्रुद्ध थे। इसका सीधा दायित्व ब्रिटेन के सिर आने लगा। अतः बदनामी से बचने के लिए ब्रिटेन ने यह मामला

Palestinian Loss of Land 1947 to Present



संयुक्त राष्ट्र संघ में डाल दिया। परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी ब्रिटेन और अमेरिका के प्रभाव में भेदभावपूर्ण निर्णय लिया। उसने फिलिस्तीनी क्षेत्र को फिलिस्तीनियों एवं यहूदियों के बीच विभाजित कर दिया। लगभग 65% क्षेत्र फिलिस्तीनी को, जबकि 35% क्षेत्र यहूदियों को दिया गया। यहूदियों ने तो इसे तत्परता से स्वीकार कर लिया, परंतु अरब राष्ट्रों ने इसे अस्वीकार कर दिया। फिर 1948 में अरब राष्ट्रों ने मिलकर यहूदियों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु अमेरिकी हथियारों की सहायता से इजरायल ने अरब राष्ट्रों को पराजित कर दिया। इस प्रकार, प्रथम विश्वयुद्ध में ही फिलिस्तीन और इजरायल का संघर्ष वह घाव बन गया जो आज तक रिसता आ रहा है।

- इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध एक ऐसा युद्ध था जो यूरोप में 31 वर्षों तक चला, परंतु अरब क्षेत्र एवं पश्चिमी एशिया में पिछले 100 वर्षों से चलता आ रहा है। इसके विषय में कहा गया था कि "It was a war to end all wars but it proved a war to end all peace."

5. सहयोगी राष्ट्र के रूप में इटली तथा जापान का असंतोष-

- जैसा कि हम जानते हैं कि इटली, जर्मनी और ऑस्ट्रिया के गुट में रहा था, परन्तु बाद में उससे बाहर हो गया तथा 1915 की लंदन की गुप्त संधि के आधार पर वह मित्र राष्ट्रों के गुट में शामिल हो गया। उसे यह आश्वासन दिया गया था कि युद्ध के पश्चात् उसे एड्रियाटिक क्षेत्र में एक बड़ा भू-भाग दिया जाएगा। परन्तु पेरिस शान्ति सम्मेलन में इटली ने अपने आपको ठगा हुआ सा महसूस किया और फिर इटालियन राष्ट्रवाद असंतुष्ट हो गया। इसका स्वाभाविक

नतीजा हुआ आगे मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली में फासीवाद का उद्भव।

- दूसरी तरफ, जापान को पेरिस शान्ति सम्मेलन में गुप्त संधि के आधार पर चीन में जर्मन क्षेत्र शान्तुंग मिल गया था, परन्तु दूसरी तरफ संयुक्त राज्य अमेरिका की दृष्टि जापान के प्रति कठोर हो गयी थी। अतः इस संधि के शीघ्र बाद 1921-22 के वाशिंगटन नौसैनिक सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापान को दण्डित करते हुए उसकी नौसैनिक क्षमता को कम कर पड़ोसियों की तुलना में सीमित कर दिया। उस समय तो जापान इसे सहन करने के लिए विवश था, परन्तु इस संधि से वह बहुत असंतुष्ट एवं क्रुद्ध था। यह एक महत्वपूर्ण कारण था कि उसने आगे हिटलर एवं मुसोलिनी के गुट में शामिल होकर रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी का निर्माण किया।

■ पेरिस शान्ति सम्मेलन की विफलता के कारण-

- पेरिस शान्ति सम्मेलन एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, परंतु अफसोस यह है कि उसके प्रावधान पिछली यूरोपीय कांग्रेस की तुलना में अधिक अल्पकालिक सिद्ध हुए। इसके निम्नलिखित कारण थे-

1. पराजित देशों के साथ अधिक कठोर व्यवहार किया गया।
2. विल्सन के 14-सूत्रीय कार्यक्रम के साथ के साथ खुलकर अवहेलना की गई।
3. संधि का निर्धारण ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका ने मिलकर किया था, परंतु संधि के क्रियान्वयन में परस्पर सहयोग नहीं हुआ क्योंकि अमेरिका अपने महाद्वीप में लौट गया था तथा ब्रिटेन और फ्रांस के बीच मतभेद उभर गया।
4. पेरिस शान्ति सम्मेलन में विश्व के सबसे बड़े राष्ट्र सोवियत रूस को शामिल नहीं किया गया।

अंतर्नुशासनात्मक दृष्टिकोण

प्रथम विश्व युद्ध यूरोपीय साम्राज्य को समाप्त तो नहीं कर सका परंतु साम्राज्यवाद के ताबूत में पहली कील अवश्य ठोक दी।

- ध्यातव्य है कि प्रथम विश्वयुद्ध ने 'जो प्रजातंत्र और स्वतंत्रता के नाम पर लड़ा गया था' उपनिवेशों की आकांक्षा को जगा दिया।
- विल्सन के 14 सूत्रीय कार्यक्रम ने आग में घी का कार्य किया।
- प्रथम विश्व युद्ध ने यूरोपीय अर्थव्यवस्था को गहरा धक्का पहुँचाया और वैश्विक स्तर पर संयुक्त राज्य अमेरिका को महाशक्ति के रूप में स्थापित कर दिया।
- यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों ने एक बार फिर उपनिवेशों पर अपना कठोर नियंत्रण स्थापित करना चाहा परंतु यह बात लगभग तय हो गई थी कि अब उपनिवेशों से उनका प्रस्थान केवल समय की बात रह गई है।